मृत्यु महोत्सव

Happy Death Festival

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)

- **कृति** : मृत्यु महोत्सव
- **मूल रचयिता** : अज्ञात
- **पद्यानुवाद** : क्षु. श्री ध्यानसागर जी महाराज
- **संस्करण** : प्रथम, जनवरी, 2011
- **आवृत्ति** : 2200 प्रतियाँ
- **मूल्य** : 15/-

- **प्राप्ति स्थान** : **धर्मोदय साहित्य प्रकाशन**
  सागर (म. प्र.)
  094249-51771
  dharmodayat@gmail.com

- **मुद्रक** : विकास आफसेट, भोपाल

सल्लेहणाए मूलं जो वच्चई तिव्व-भत्ति-रायण।
भोत्तूण य देवसुखं सो पावदि उत्तमं ठाणं॥

जो साधु व श्रावक अत्यन्त भक्ति के साथ सल्लेखना-धारक के चरणों में जाता है, वह देवगति के सुखों को भोगकर उत्तम स्थान-निर्वाण को प्राप्त होता है।

एगम्मि भवग्गहणे समाणिमरणेण जो मदो जीवो।
ण हु सो हिंउदि बहुसो सत्तट्ठभवे पमत्तूण॥

जो जीव एक भव में समाधिमरण करके मरण को प्राप्त होता है, वह जीव सात-आठ भव से अधिक संसार में परिभ्रमण नहीं करता है।

मृत्यु महोत्सव

मृत्यु - मार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे।
समाधि-बोधि-पाथेयं यावन्मुक्ति-पुरी पुरः ॥1॥

अन्वयार्थ : (**यावत्**) जब तक (**मुक्ति-पुरी**) मुक्तिरूपी नगरी (**पुरः**) सम्मुख न आ जाए, (**वीतरागः**) वीतराग भगवान् (**मृत्युमार्गे**) मृत्यु-मार्ग पर (**प्रवृत्तस्य मे**) अग्रसर मुझे (**समाधिबोधिपाथेयं**) समाधि और बोधिरूपी पाथेय (**ददातु**) प्रदान करें।

I walk on the path of deaths high pitch Kindly, o vitaraga, ye bestow, Patheya, Samadhi, bodhi, with which I to the eternal home can go.

अर्थ : हे वीतराग भगवन्! मैं मृत्यु के मार्ग पर हूँ। मुझे आप समाधि अर्थात् स्वरूप की सावधानी तथा बोधि अर्थात् रत्नत्रय रूप पाथेय अर्थात् परलोक के मार्ग में उपकारक-भोजनरूप वस्तु प्रदान करें; जिससे मैं मुक्तिपुरी तक पहुँच जाऊँ, ऐसी प्रार्थना करता हूँ।

भावार्थ : मैंने अनादिकाल से अनन्त कुमरण किए हैं, जिन्हें सर्वज्ञ वीतराग देव ही जानते हैं। मैंने एक बार भी सम्यक् मरण नहीं किया, यदि सम्यक् मरण किया होता तो फिर संसार में मरण का पात्र नहीं होता।

जहाँ देह तो मर जाये; किन्तु आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव विषय कषायों द्वारा नहीं घाता जा सके, वह सम्यक् मरण है। जहाँ मिथ्या श्रद्धानी होकर देह के नाश को ही अपनी आत्मा का नाश जानकर संक्लेश पूर्वक मरण करना है, वह कुमरण है।

जीर्ण हुई मम जीवन-रेखा, आज अतः मेरे स्वामी।
हुआ मृत्यु की ओर अग्रसर, बन करके शिवपथगामी।
जब तक मोक्ष-नगर ना आए, मुझे मार्ग का व्यय देना,
देना बोधि-समाधि साधना, काया में कितना रहना?॥

मिथ्यादर्शन के प्रभाव से मैंने देह को ही आत्मा मानकर अपने ज्ञान-दर्शन स्वरूप का घात करके अनन्त परिवर्तन किए हैं। अब आप वीतराग भगवान् से ऐसी प्रार्थना करता हूँ कि मेरा मरण के समय वेदना मरण व आत्मज्ञान रहित कुमरण नहीं होवे। सर्वज्ञ वीतराग ही शरण सहित संक्लेश रहित धर्मध्यान पूर्वक सम्यक् मरण चाहता हूँ इसलिए वीतरागी की ही शरण ग्रहण करता हूँ।

अब मैं अपने आत्मा को समझाता हूँ

कृमि - जाल - शताकीर्णे, जर्जरे देह - पञ्जरे।

भुज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञान-विग्रहः ॥2॥

अन्वयार्थ : (**कृमिजालशताकीर्णे**) सैकड़ों जीव-जन्तुओं के समूह से व्याप्त (**जर्जरे**) जीर्ण-शीर्ण (**देह-पञ्जरे**) देहरूपी पिंजरे के (**भुज्यमाने**) नष्ट होने पर (**न भेतव्यं**) भयभीत नहीं होना चाहिए (**यतः**) क्योंकि (**त्वं**) तुम (**ज्ञान विग्रहः**) ज्ञान-शरीरी हो।

With myriad germs body's cage is full. Which becomes quite rotten and old. With its decay, don't be fearful, For, your spiritual body is knowledge-fold.

अर्थ : हे आत्मन्! कृमि समूह के सैंकड़ों जालों से भरे, नित्य जर्जर होते जा रहे इस देहरूप पिंजरे के नष्ट होने का तुम भय नहीं करो, क्योंकि तुम तो ज्ञान शरीरी हो।

भावार्थ : तुम्हारा रूप तो ज्ञान है, जिसमें ये सकल पदार्थ प्रकाशित हो रहे हैं, तथा अमूर्तिक, ज्ञान ज्योति स्वरूप, अखण्ड अविनाशी, ज्ञाता, दृष्टा है। जो यह हांड, माँस, चमड़ामय, महादुर्गन्धित विनाशीक देह है, वह तुम्हारे रूप से

कृमि-गण-पूरित, जरा जर्जरित, काया है मानव-काया,
अपने कर्म-उदय के कारण, मैंने यह बन्धन पाया।
यदि यह नश्वर नष्ट हो रही, मैं काहे को घबराऊँ?
मैं हूँ ज्ञानशरीरी चेतन क्यों समाधि ना अपनाऊँ?॥

अत्यन्त भिन्न है; कर्म के वश से एक क्षेत्र में अवगाहन करके एक से होकर (मिलकर) रह रहे हो तो भी तुझमें-इसमें अत्यन्त भेद है। यह देह ही पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड है, जो समय आने पर नष्ट हो जायेगा, किन्तु तुम अविनाशी अखण्ड ज्ञायक रूप हो। इस देह का नाश होने से भय क्यों करते हो?

देहान्तर में गमन करने से भय नहीं करो

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्यु-महोत्सवे।
स्वरूपस्थः पुरं याति, देही देहान्तर-स्थितिम्॥ 3॥

अन्वयार्थ : (**ज्ञानिन्!**) हे ज्ञानी जीव! (**मृत्यु-महोत्सवे**) मृत्यु महोत्सव के (**प्राप्ते**) प्राप्त होने पर (**भयं**) भय (**कस्मात्**) किससे (**भवेत्**) हो सकता है? (**देही**) जीवात्मा (**स्वरूपस्थः**) स्वरूप-स्थित हो (**देहान्तरणस्थितिं पुरं**) अन्य देह में स्थिति रूप नगर को (**याति**) प्राप्त होता है।

Why fear for a right knower.Facing the happy death festivity т?Atman that dwells in self- sphere,while finds its place in other body.

अर्थ : हे ज्ञानी! तुमको वीतरागी सम्यग्ज्ञानी उपदेश करते हैं-मृत्यु रूप महान् उत्सव प्राप्त होने पर क्यों भय करते हो? इस देह में रहने वाला आत्मा अपने स्वरूप में रहता हुआ अन्य देह रूप नगर को चला जाता है, इसमें भय करने का क्या कारण है?

भावार्थ : जैसे कोई मनुष्य एक जीर्ण कुटिया में से निकलकर अन्य नए महल में जाकर रहने लगता है, तो वह बड़े उत्सव का अवसर है। उसी प्रकार यदि यह आत्मा अपने स्वरूप में रहता हुआ ही इस जीर्ण देह रूप कुटिया को छोड़कर नए देह रूपी महल को प्राप्त कर ले तो यह महान् उत्सव

जब कोई जन धूम-धाम से, अन्य-नगर रहने जाता,
नव-निवास के शुभ-अवसर पर, वह न तनिक भी घबराता।
मृत्यु-महोत्सव की बेला में, ज्ञानी! तुमको भय कैसा ?
आत्मलीन चेतन को नूतन, तन मिलता कंचन जैसा॥

का अवसर है, इसमें कुछ हानि नहीं है, जो भय किया जाये।

यदि अपने ज्ञायक स्वभाव में रहते हुए, पर को अपना मानना छोड़कर, परलोक जाओगे तो बहुत आदर सहित दिव्य, धातु-उपधातु रहित, वैक्रियिक देह में देव होकर अनेक महर्द्धिक देवों में पूज्य महान् देव होवेंगे; और यदि यहाँ भय करके अपने ज्ञायक स्वभाव को बिगाड़कर पर में ममता धारण करते हुए मरोगे तो एकेन्द्रियादि की देह में अपने ज्ञान का ह्रास करके जड़ जैसे हो जाओगे।

इसलिए मलिन क्लेशवान देह को छोड़कर क्लेश रहित उज्ज्वल देह में जाना तो बड़े उत्सव का कारण है।

समाधिमरण उपकारक है

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद्, दृश्यते पूर्व-सत्तमैः।
भुज्यते-स्वर्भवं सौख्यं मृत्यु-भीतिः कुतः सताम्॥4॥

अन्वयार्थ : (**सतां**) सत्पुरुषों के पास (**मृत्युभीतिः**) मृत्यु का भय (**कुतः**) कैसे (**दृश्यते**) देखा जा सकता है, (**यस्मात्**) जिस मृत्यु के कारण (**पूर्वसत्तमैः**) पूर्ववर्ती सत्पुरुषों के द्वारा (**सुदत्तं**) सुपात्रों को प्रदत्त दान, (**प्राप्यते**) प्राप्त और (**स्वर्भवं**) स्वर्ग में होने वाला (**सौख्यं**) सुख (**भुज्यते**) उपमुक्त हुआ है।

With it charity's reward is gained, This portrayed by old pious men, Heavenly pleasure can be attained, Then why do fear o, holy men т?

अर्थ : पूर्व काल में हुए गणधर आदि सत्पुरुष ऐसा बतलाते हैं कि जिस मृत्यु के द्वारा अच्छी तरह से दिया गया फल प्राप्त होता है, स्वर्गलोक का

सत्पुरुषों ने सत्पात्रों को जो - जो उत्तम दान दिया,
स्वर्ग-सुखों के संग उसे फिर मृत्यु-कृपा से प्राप्त किया।
तब सज्जन क्यों डरे मृत्यु से, जो चेतन को हितकारी ?
इष्ट-प्रदाता को इस जग में, कौन कहेगा अपकारी ?॥

सुख भोगा जाता है, सत्पुरुषों को उस मृत्यु से कैसे भय होगा?

भावार्थ : अपने कर्त्तव्य का फल तो मृत्यु होने के बाद ही मिलता है। आपने जो छहकाय के जीवों को अभयदान दिया तथा राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि का नाश करके, असत्य, अन्याय, कुशील, परधन हरण का त्याग करके, परम संतोष धारण करके अपने आत्मा को अभयदान दिया उसका फल स्वर्गलोक के सिवा कहाँ भोगा जाता है? वह स्वर्गलोक का सुख तो मृत्यु नाम के मित्र की कृपा से ही प्राप्त होता है। अतः मृत्यु के समान इस जीव का कोई अन्य उपकारक नहीं है।

यहाँ इस मनुष्य पर्याय के जीर्ण शरीर में कौन-कौन से दुःख भोगना पड़ते, कितने समय तक और रहना पड़ता? आर्तध्यान-रौद्रध्यान करके तिर्यञ्च-नरकगति में जा पड़ते; इसलिए अब मरण का भय करके तथा देह कुटुम्ब परिग्रह की ममता करके चिन्तामणि-कल्पवृक्ष के समान समाधिमरण को बिगाड़ करके भय सहित व ममतावान होकर कुमरण करके दुर्गति में जाना उचित नहीं है।

समाधिराजा बन्दीगृह से मुक्त कराता है

आगर्भाद्दुःख - सन्तप्तः प्रक्षिप्तो देह-पिञ्जरे।
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्यु-भूमिपतिं विना॥ 5॥

अन्वयार्थ : (**आगर्भात्**) गर्भावस्था के प्रारम्भ से (**देह-पञ्जरे**) देहरूपी पिञ्जरे में (**प्रक्षिप्तः**) डाली गयी (**दुःखसन्तप्तः आत्मा**) दुःखों से सन्तप्त आत्मा (**मृत्युभूमिपतिं विना**) मृत्युरूपी राजा के बिना (**अन्येन**) अन्य द्वारा (**न विमुच्यते**) विमुक्त नहीं की जाती।

तन-पिंजरे में पड़ी हुई है, आत्मा गर्भ-अवस्था से,
आकुल-व्याकुल है इस तन की, कर्माधीनव्यवस्था से।
ज्यों बन्दी को बन्दी-गृह से, राजा बन्धन-मुक्त करे,
मृत्युराज बिन तन-बन्धन से कौन मुझे निर्मुक्त करे ?

Being troubled with womb's pain In body, soul has been hidden; Real freedom, ot! It can't attain, Without the help of death- sovereign.

अर्थ : इस कर्म नाम के मेरे बैरी ने मेरी आत्मा को जिस क्षण से यह गर्भ में आया, तभी से देहरूप पिंजरे में डाल रखा है व सदा से ही क्षुधा, तृषा, रोग, वियोग आदि अनेक दु:खों से सन्तप्त होकर पड़ा हूँ। अब ऐसे अनेक दु:खों से व्याप्त इस देह रूप पिंजरे से मृत्यु नाम के राजा के बिना मुझे कौन छुड़ावेगा?

भावार्थ : मैं इस देह रूप पिंजरे में कर्म रूप शत्रु द्वारा पटका गया इन्द्रियों के आधीन हुआ अनेक कष्ट सह रहा हूँ। नित्य ही क्षुधा–तृषा की वेदना कष्ट देती है, निरन्तर श्वास–उच्छ्वास द्वारा पवन को खेंचना और निकालना, अनेक प्रकार के रोगों के दु:ख भोगना, पेट भरने के लिए अनेक प्रकार की पराधीनता; सेवा, कृषि, वाणिज्य आदि द्वारा महादु:खी होते रहना; धनवान के, राजा के, स्त्री–पुत्रादि के आधीन रहना, ऐसे महान् बंदीगृह समान देह में से मृत्यु नाम के बलवान राजा के बिना कौन निकाले?

इस देह को कहाँ तक ढोता? उसे नित्य उठाना, पानी पिलाना, स्नान कराना, निद्रा लिवाना, कामादि विषय साधन कराना, अनेक वस्त्र–आभूषणों से सजाना, रात–दिन इस देह का ही दासपना करते हुए भी यह शरीर आत्मा को अनेक कष्ट देता है, भयभीत करता है, आत्मा का स्वरूप भुलाये रखता है। ऐसे कृतघ्न देह से बाहर निकलना मृत्यु नाम के राजा के बिना नहीं होता।

यदि ज्ञान सहित, देह से ममता छोड़कर, सावधानी पूर्वक, धर्मध्यान सहित, संक्लेश रहित, वीतरागता पूर्वक मैं समाधिमरण नामक राजा की सहायता ले लूँ तो फिर मेरा आत्मा देह धारण ही नहीं करेगा, दु:खों का पात्र नहीं होगा। समाधिमरण नाम का राजा बड़ा न्यायमार्गी है, मुझे इसी की शरण प्राप्त होवे। मेरा कुमरण नहीं हो।

सर्व - दुःखं - प्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः।
मृत्यु-मित्र-प्रसादेन प्राप्यन्ते सुख-सम्पदः॥ 6॥

अन्वयार्थ : (मृत्यु-मित्रप्रसादेन) मृत्युरूपी मित्र के प्रसाद से **(सर्वदुःखप्रदं पिण्डं)** सर्व दुखों को प्रदान करने वाले पिण्ड को **(दूरीकृत्य)** दूर करके **(आत्मदर्शिभिः)** आत्मदर्शीजनों द्वारा **(सुख-सम्पदः)** सुख-सम्पदाएँ **(प्राप्यन्ते)** प्राप्त की जाती हैं।

The self knowers getting rid of body, the root of displeasure, live with happiness, in company of death friend, having self-joy treasure.

अर्थ : जो आत्मदर्शी, आत्मज्ञानी हैं वे मृत्यु नामक मित्र की कृपा से सर्व दुःखों को देने वाले देह पिण्ड को दूर छोड़कर सुख की सम्पदा को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ : जो इस सप्तधातुमय महा अशुचि विनाशीक देह को छोड़कर दिव्य वैक्रियिक देह में प्राप्त होने वाले अनेक सुखों की संपत्ति प्राप्त करते हैं, वह सब आत्मज्ञानियों के समाधिमरण का प्रभाव है। समाधिमरण समान इस जीव का उपकार करने वाला कोई नहीं है।

इस देह में अनेक प्रकार के दुःख भोगना, महान् रोगादि दुःख भोग-भोग कर मरना फिर तिर्यञ्च देह में व नर्क में असंख्यात काल तक असंख्य प्रकार के दुःख भोगना, जन्म-मरण रूप अनन्त परिवर्तन करना, जहाँ कोई शरण नहीं, ऐसे इस संसार में परिभ्रमण से रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं है।

अशुभ कर्म के कुछ मंद उदय से मनुष्यगति, उच्चकुल, इंद्रियों की

नर-तन पा नर नर्तन करता, कारण यह मोही-मन है,
सब दुःखों को देने वाला, दुष्ट-पिण्ड यह नर-तन है।
इसी पिण्ड से पिण्ड छुड़ाकर, मृत्यु-सखा सुख देता है,
आत्मदर्शियों से प्रतिफल में, स्वयं नहीं कुछ लेता है॥

पूर्णता, सत्पुरुषों की संगति व भगवान् जिनेन्द्र का परमागम का उपदेश प्राप्त हुआ है। अब यदि सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-त्याग-संयमसहित, समस्त कुटुम्ब परिग्रह में ममत्व रहित होकर, देह से भिन्न ज्ञान स्वभाव रूप आत्मा का अनुभव करके, भय रहित, चार आराधना की शरण सहित मरण हो जाये तो इस समान तीन लोक में तीन काल में इस जीव का हित अन्य नहीं है। संसार परिभ्रमण से छूट जाना ही इस समाधिमरण नाम के मित्र की कृपा का फल है।

समाधिमरण कल्पवृक्ष हैं

मृत्यु-कल्प-द्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः।
निमग्नो जन्म-जम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति॥ 7॥

अन्वयार्थ : (**येन**) जिसके द्वारा (**मृत्यु-कल्प-द्रुमे**) मृत्यु रूपी कल्पवृक्ष प्राप्त होने पर (**आत्मार्थः**) आत्महित (**न साधितः**) नहीं साधा गया, (**जन्मजम्बाले**) संसाररूपी कीचड़ में (**निमग्नः सः**) निमग्न वह (**पश्चात्**) आगामी काल में (**किं करिष्यति**) क्या कर लेगा ?

Getting kalp-vraksha, divine tree who has not done his self's welfare, he stuch in world's mud boundry, afterwards what can he do hereT?

अर्थ : जो जीव मृत्यु नामक कल्पवृक्ष के प्राप्त होने पर भी अपना कल्याण सिद्ध नहीं कर सका, वह जीव संसार रूप कीचड़ में डूबा हुआ फिर बाद में क्या करेगा?

भावार्थ : इस मनुष्य जन्म में मरण का संयोग है, वह साक्षात् कल्पवृक्ष हैं, जो वांछित फल लेना है, वह ले लो। यदि ज्ञान सहित अपने निज स्वभाव को

जिसको अवसर प्राप्त न होता, उसे न कोई चारा है,
पर जो अवसर पाकर खोता, वह दुर्मति का मारा है।
मृत्यु-कल्पतरु को पाकर भी,जो हित-साधन ना करता,
वह बिगाड़ता निज-भविष्य को, जन्म-पंक से ना तरता॥

ग्रहण कर आराधना सहित मरण करोगे तो स्वर्ग का महर्द्धिक देवपना, इन्द्रपना, अहमिन्द्रपना पाकर तत्पश्चात् चक्रीपना, तीर्थङ्करपना पाकर निर्वाण को प्राप्त हो जाओगे। मरण समान तीनलोक में दाता दूसरा नहीं है। ऐसे दाता को पाकर भी यदि विषय कषायों की वांछा सहित ही रहोगे तो विषय वांछा का फल तो नरक-निगोद है। मरण नाम के कल्पवृक्ष को बिगाड़ोगे तो ज्ञानादि अक्षयनिधान रहित होकर संसार रूप कीचड़ में डूब जाओगे।

हे भव्य! यदि तुम वांछा के मारे हुए खोटे नीच पुरुषों का सेवन करते हो, अतिलोभी होकर विषयों को भोगने के लिए धन की प्राप्ति हेतु हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह में आसक्त होकर निंद्य कर्म करते हो तो भी वांछा पूर्ण नहीं होती है; किन्तु दुःख के मारे मरण ही करते हो, कुटुम्बादि को छोड़कर विदेशों में परिभ्रमण करते हो, निंद्य आचरण करते हो तथा निंद्य कर्म करते हो तो भी मरण तो अवश्य ही करोगे।

यदि एक बार भी समता धारण करके त्यागव्रत सहित मरण करोगे तो फिर संसार परिभ्रमण का अभाव करके अविनाशी सुख को प्राप्त हो जाओगे। इसलिए ज्ञानसहित पण्डितमरण करना ही उचित है।

समाधिमरण उत्तम दातार है

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः।
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सतोत्थितिर्यथा॥ 8॥

अन्वयार्थ : (यतः) जिससे **(जीर्ण देहादिकं)** जीर्ण देहादि **(सर्वं)** सर्व **(नूतनं)** नवीन **(जायते)** हो जाते हैं, **(सः मृत्युः)** वह मृत्यु **(किं)** क्या **(सतां)** सत्पुरुषों के **(मोदाय)** हर्ष के लिए **(न)** न

जीर्ण - शीर्ण देहादिक सारे, जिससे नूतन हो जाते,
उसी मृत्यु से मोही प्राणी, ना जाने क्यूँ घबराते।
पुण्य-कर्म का उदय मनुज को, ज्यों प्रमोद से भरता है,
देह-छूटना सत्पुरुषों को, त्यों आनंदित करता है॥

होगी, **(यथा)** जिस प्रकार **(सातोत्थितिः)** साता अर्थात् पुण्य का उदय होता है ?

Death with which all old rotten- are being turned in quite freshness. Then, is death not right men- For pleasure-bearngs and happinessT?

अर्थ : जिस मृत्यु से जीर्ण देहादि सब छूटकर नए मिल जाते हैं वह मृत्यु सत्पुरुषों के लिए साता के उदय के समान क्या हर्ष का कारण नहीं है? ज्ञानियों की मृत्यु तो उन्हें हर्ष का ही कारण होती है।

भावार्थ : यह मनुष्यों का शरीर भोजन कराते हुए भी नित्य ही समय-समय जीर्ण होता जाता है; देवों के शरीर के समान वृद्धावस्था रहित नहीं है। रात-दिन बल घटता जाता है; कान्ति व रूप मलिन होता जाता है; कोमल से कठोर होता जाता है; सभी नसों के हड्डियों के जोड़-बंधन ढीले होते जाते हैं; चमड़ा ढीला होता है, मांसादि को छोड़कर झुर्रियों युक्त होता जाता है; नेत्रों की सुन्दरता बिगड़ जाती है; कानों की श्रवण करने की शक्ति घटती जाती है; हाथों-पैरों में दिन-दिन कमजोरी बढ़ती जाती है; चलने की शक्ति धीमी होती जाती है; चलते, बैठते, उठते श्वास बढ़ने लगती है; कफ बढ़ने लग जाता है, अनेक रोग बढ़ते जाते हैं; ऐसी जीर्ण देह का दुःख कहाँ तक भोगता व ऐसे देह का घींसना (घसीटना) कहाँ तक होता?

मरण नामक दातार के बिना ऐसे निंद्य देह से छुड़ाकर नवीन देह में निवास कौन कराता? जीर्ण शरीर में असाता का बड़ा उदय भोगना पड़ता है। मरण नामक उपकारी दाता के बिना ऐसी असाता कौन दूर कर सकता है? जो सम्यग्ज्ञानी हैं, वे तो मृत्यु के आने पर बड़ा हर्ष मानते हैं तथा व्रत, संयम, त्याग, शील में सावधान होकर ऐसा प्रयत्न करते हैं, जिससे फिर ऐसी दुःख की भरी देह को धारण ही नहीं करना पड़े। सम्यग्ज्ञानी तो इसी को महासाता का उदय मानते हैं।

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्।
मृत्यु-भीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः॥ 9॥

अन्वयार्थ : (**देहस्थः**) देह में स्थित जीव (**सदा**) सदा (**सुखं दुःखं**) सुख-दुःख को (**वेत्ति**) जानता है (**च**) और (**स्वयं**) स्वयं (**व्रजेत्**) प्रयाण करें (**तदा**) तब (**परमार्थतः**) परमार्थ से (**मृत्यु-भीतिः**) मृत्यु का भय (**कस्य**) किसे (**जायते**) हो सकता है ?

Soul knows always pleasure and pain To other world itself, it goes; when next happy world it go gain, Who is afraid by long reposeT?

अर्थ : यह आत्मा देह में रहता हुआ भी सदाकाल सुख-दुःख को जानता ही है। परलोक की ओर गमन स्वयं करे तब परमार्थ से मृत्यु का भय किसको होगा?

भावार्थ : अज्ञानी बहिरात्मा है, इसलिए वह देह में रहता हुआ भी मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं मरता हूँ, मैं भूखा, मैं प्यासा, मेरा नाश हुआ-ऐसा मानता है। अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है-जो उत्पन्न हुआ है वह मरेगा। पुद्गल परमाणुओं के पिण्डरूप यह देह उत्पन्न हुई है, वह विनशेगी। मैं ज्ञानमय अमूर्तिक आत्मा, मेरा नाश कभी नहीं होता है। ये भूख, प्यास, वात, पित्त, कफ, रोग, भय, वेदना पुद्गल के हैं, मैं इनका ज्ञाता हूँ। मैं व्यर्थ ही इनमें अहंकार करता हूँ।

इस शरीर का और मेरा एक क्षेत्र में रहने रूप अवगाह (सम्बन्ध) है तथापि मेरा रूप ज्ञाता है, शरीर जड़ है; मैं अमूर्तिक हूँ; देह मूर्तिक है; मैं अखण्ड

देह - निवासी चेतन अपने, सुख-दुख को देखे जाने,
और किसी दिन इसी देह से, स्वयं निकलने की ठाने।
स्वेच्छा से जाने वाला क्या, कभी, कहीं घबराता है ?
न सल्लेखनाधारी नर को, यम कंपित कर पाता है॥

एक हूँ, शरीर अनेक परमाणुओं का पिण्ड है; मैं अविनाशी हूँ, देह विनाशीक है। अब इस देह में जो रोग, क्षुधा, तृषादि उत्पन्न होंगे, मैं उनका ज्ञाता ही रहूँगा, क्योंकि मेरा तो ज्ञायक स्वभाव है।

पर में ममत्व करना, वही अज्ञान है, वही मिथ्यात्व है। जैसे एक मकान को छोड़कर दूसरे मकान में रहने लगते हैं, उसी प्रकार मेरे शुभ-अशुभ भावों से बाँधे कर्मों से बने दूसरे शरीर में मुझे जाना है। इसमें मेरे स्वरूप का नाश नहीं होता है। अब निश्चय से विचार करने पर मरण का भय किसको होगा?

समाधिमरण आनन्द देने वाला है

संसारासक्त-चित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञान-वैराग्यवासिनाम्॥ 10॥

अन्वयार्थ : (संसारासक्तचित्तानां नृणां) संसार में आसक्त है चित्त जिनका, ऐसे मनुष्यों की **(मृत्युः)** मृत्यु **(भीत्यै)** भय के लिए **(भवेत्)** हो सकती है **(पुनः)** और **(सः अपि)** वह मृत्यु भी **(ज्ञानवैराग्यवासिनां)** ज्ञान एवं वैराग्यवासियों के लिए **(मोदायते)** आनन्दकारी होती है।

Who is addicted with passion, to world, for him death is fear, But to a sag or a wise person, It is for good and for pleasure.

अर्थ : संसार में जिनका चित्त आसक्त है, अपने स्वरूप को जो नहीं जानते हैं, मृत्यु उनके लिए भय करने वाली है; किन्तु जो निज स्वरूप के ज्ञाता हैं, संसार से वैरागी हैं, उनके लिए तो मृत्यु आनन्द ही देने वाली है।

भावार्थ : मिथ्यादर्शन के उदय से जो आत्मज्ञान रहित हैं, देह को ही

छोड़ न पाते विषय-सुखों को, जब छूटें, तब डरते हैं,
जो संसारासक्त बने वे, डरते - डरते मरते हैं।
लेकिन ज्ञान - विराग-निवासी, अनासक्त होते जाते,
और अन्त में हर्षित-मन को, मृत्यु-महोत्सव को पाते॥

आत्मा मानते हैं, खाना-पीना, काम-भोग आदि इंद्रियों के विषयों में ही सुख मानते हैं, ऐसे बहिरात्माओं को तो उनका मरण बड़ा भय उत्पन्न करने वाला है। वे तो हाय मेरा नाश हो गया, फिर खाना-पीना कहीं नहीं मिलेगा, नहीं मालूम मेरे पश्चात् क्या होगा, कैसे मरुँगा, अब यह देखना-मिलना कुटुम्ब का समागम सब मेरा गया, अब किसकी शरण में जाऊँ, कैसे जीवित रहूँ? इस प्रकार महाक्लेश करते हुए मरते हैं।

जो आत्मज्ञानी हैं, उनको मृत्यु के आने पर ऐसा विचार आता है - मैंने तो देह रूप बंदीगृह में पराधीन रहते हुए इंद्रियों के विषयों की चाह की दाह से, मिले हुए विषयों की अतृप्ति से, नित्य क्षुधा-तृषा, शीत-उष्ण रोगों से उत्पन्न महावेदना से एक क्षण को भी सुख नहीं पाया है। महान् दुःख, पराधीनता, अपमान, घोर वेदना, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग भोगते हुए महा संक्लेश से ही काल व्यतीत किया है। अब ऐसे कष्टों से छुड़ाकर, पराधीनता रहित, मुझे अनन्त सुख स्वरूप, जन्म-मरण रहित, अविनाशी स्थान को प्राप्त कराने वाला यह मरण का अवसर प्राप्त हुआ है। यह मरण महासुख देने वाला है, अत्यन्त उपकारक है। यह संसारवास केवल दुःख रूप है। इसमें एक समाधिमरण ही शरण है, अन्य कोई ठिकाना नहीं है; इसके बिना चारों गतियों में महान् कष्ट ही भोगा है। अब संसारवास से अत्यन्त विरक्त मैं समाधिमरण की शरण ग्रहण करता हूँ।

आत्मा को परलोक जाने से कोई नहीं रोग सकता है

पुराधीशो यदा याति सुकृत्यस्य बुभुत्सया।
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पाञ्च-भौतिकैः॥ 11॥

अन्वयार्थ : (यदा) जब **(पुराधीशः)** जीव **(सुकृत्यस्य)**

पूजा, दान, पठन शास्त्रों का, जप, तप, सेवा गुरु जन की,
दीन-दुखी जीवों पर करुणा, विधि है पुण्य उपार्जन की।
अपना अर्जित पुण्य देखने, जब चेतन तन से जाता,
पंचभूत के प्रपंच से तब, कोई रोक नहीं पाता॥

पुण्य के (**बुभुत्सया**) जानने की इच्छा से (**याति**) प्रयाण करता है, (**तदा**) तब (**असौ**) वह (**पाञ्चभौतिकैः प्रपञ्चैः**) पंचभूत-सम्बन्धी प्रपंचों के माध्यम से (**केन**) किसके द्वारा (**वार्यते**) रोका जा सकता है?

For previous good deed's enjoyments, When to next world travel soul. The prolixities of five elements- How can hinder in way og goalT?

अर्थ : जिस समय यह आत्मा अपने किए हुए कर्मों का फल भोगने की इच्छा से परलोक को जाता है, उस समय इसे पंचभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) सम्बन्धी शरीर आदि के प्रपंचों द्वारा कौन रोक सकता है?

भावार्थ : जब इस जीव की वर्तमान आयु पूर्ण हो जाती है तथा अन्य परलोक सम्बन्धी आयु, काय आदि का उदय आ जाता है तब परलोक को गमन करने वाले आत्मा को शरीरादि पंचभूत कोई भी रोकने में समर्थ नहीं होते हैं। अतः चार आराधनाओं की बहुत उत्साह सहित शरण ग्रहण कर मरण करना श्रेष्ठ है।

समाधिमरण निर्वाण देने वाला है

मृत्यु-काले सतां दुःखं यद् भवेद् व्याधि-संभवम्।
देह-मोह-विनाशाय मन्ये शिव-सुखाय च॥ 12॥

अन्वयार्थ : (**व्याधिसंभवं**) व्याधियों से उत्पन्न (**यत्**) जो (**दुःखं**) दुःख (**सतां**) सत्पुरुषों के (**मृत्युकाले**) मृत्युकाल में (**भवेत्**) हो, (**मन्ये**) मैं समझता हूँ (**देहमोह विनाशाय**) देह सम्बन्धी मोह नष्ट करने के लिए (**च**) और (**शिवसुखाय**) मोक्ष-सुख के लिए होता है।

मृत्यु-काल में सत्पुरुषों को जो पीड़ा उठ आती है,
कर्म-जनित कुछ तीव्र व्याधियाँ आकुलता उपजाती है।
मैं तो मानूँ यह पीड़ा ही देह - मोह को दूर करे,
समता का अवसर प्रदान कर शिव-सुख से भरपूर करे॥

Due to karma, pain and disease. At the time of death appear, To wise men they are for release. From allurement, for Moksha's pleasureT!

अर्थ : मृत्यु के समय पूर्व कर्म के उदय से रोगादि व्याधियों द्वारा जो दुःख उत्पन्न होता है, वह सत्पुरुषों को देह की ममता छुड़ाने के लिए तथा निर्वाण का सुख प्राप्त कराने के लिए होता है।

भावार्थ : जिस दिन से इस जीव ने जन्म लिया है, उसी दिन से देह में तन्मय होकर इसी में रहने को ही बड़ा मानता है। इस देह को अपना निवास स्थान जानता है, इसी से ममता कर रहा है, इसमें रहने के सिवाय अन्य कहीं अपना ठिकाना नहीं दिखाई देता है। जब इस देह में रोगादि के द्वारा दुःख उत्पन्न होता है तब सत्पुरुषों का इससे मोह नष्ट हो जाता है तथा यह साक्षात् दुःखदाई, अस्थिर, विनाशीक दिखाई देता है। देह का कृतघ्नपना जब प्रकट दिखाई देता है तब यह आत्मा अविनाशी पद की प्राप्ति के लिए उद्यमी होता है, वीतरागता प्रकट हो जाती है।

ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि रोग उपकारी है। इस देह से ममता करके मैंने अनन्तकाल जन्म-मरण, अनेक वियोग, रोग, सन्ताप आदि नरकादि गतियों में बहुत दुःख भोगे हैं। ऐसे दुःखदायी देह में ही फिर से ममत्व करके, क्या अब भी अपने को भूल करके एकेन्द्रिय आदि अनेक कुयोनियों में भ्रमण का कारण कर्म बंध करने के लिए ममता करूँ? इस शरीर में अभी जो ज्वर, काश, श्वास, शूल, वात, पित्त, अतिसार, मंदाग्नि इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं, वे इस देह से ममत्व घटाने के लिए मुझे बड़ा उपकार करते हैं, धर्म में सावधानी कराते हैं।

यदि रोगादि नहीं उत्पन्न होते तो देह से मेरी ममता भी नहीं घटती तथा अभिमान भी नहीं घटता। मैं तो मोह की अंधेरी से अंधा होकर देह को अजर-अमर मान रहा था। अब इन रोगों की उत्पत्ति ने मुझे सचेत कराया है। अब इस देह को अनित्य-अशरण जानकर, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप को ही एक निश्चय शरण मानकर, आराधनाओं के धारक भगवान् पंच परमेष्ठी को चित्त में धारण करता हूँ।

अब इस समय हमारे लिए एक जिनेन्द्र का वचनरूप अमृत ही परम

औषधि है। जिनेन्द्र के वचनामृत बिना विषय-कषायरूप रोग जनित दाह को मिटाने में कोई समर्थ नहीं है। बाह्य औषधि आदि तो असाता कर्म का मंद उदय होने पर कुछ देर के लिए, किसी एक रोग को शान्त कर देती है; किन्तु यह देह तो अनेक रोगों से भरी हुई है, यदि एक रोग मिट गया, तो अन्य रोग से होने वाली वेदना भोगकर फिर भी मरण तो करना ही पड़ेगा। इसलिए जन्म-जरा-मरण रूप रोग को दूर करने वाले भगवान् के उपदेशरूप अमृत का ही पान करता हूँ।

औषधि आदि हजार उपाय करने पर भी विनाशीक देह के रोग नहीं मिटेंगे। इसलिए रोग से दुःखी होकर कुगति का कारण दुर्ध्यान करना उचित नहीं है।

रोग आने पर भी उसे बड़ा भला ही मानो कि इस रोग के प्रभाव से ही ऐसे जीर्ण गले हुए शरीर से मैं छूट जाऊँगा। यदि रोग नहीं आता तो मेरे पूर्वकृत कर्म निर्जरित नहीं होते तथा देहरूप महा दुर्गन्धित दुःखदायी बन्दीगृह से मेरा शीघ्र छूटना भी नहीं होता। इस रोग रूप मित्र की सहायता जैसे-जैसे देह में बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही मुझे रागबंधन, कर्मबंधन, शरीर बंधन से छूटने में शीघ्रता हो रही है।

यह रोग तो देह में है, देह को ही नष्ट करेगा। मैं आत्मा तो अमूर्तिक चैतन्य स्वाभावी अविनाशी हूँ, ज्ञाता हूँ। यह रोग जनित दुःख मेरे जानने में आता है, मैं तो मात्र जानने वाला ही हूँ, इसके साथ मेरा नाश नहीं होगा। जैसे लोहे की संगति में अग्नि भी घनों का घात सहती है, वैसे ही शरीर की संगति से वेदना का जानना मुझे भी होता है। जैसे अग्नि झोपड़ी जलाती है, झोपड़ी के भीतर का आकाश नहीं जलता है; वैसे ही अविनाशी, अमूर्तिक, चैतन्यधातुमय आत्मा का रोग रूप अग्नि से नाश नहीं होता है।

अपने द्वारा बांधा गया कर्म उदय में आने पर अपने को ही भोगना पड़ेगा। कायर होकर भोगूँगा तो कर्म नहीं छोड़ेगा तथा धैर्य धारण कर भोगूँगा तो भी कर्म नहीं छोड़ेगा। इसलिए दोनों लोकों को बिगाड़ने वाले कायरपने को धिक्कार हो। कर्म का नाश करने वाला धैर्य धारण करना ही श्रेष्ठ है।

हे आत्मन्! तुम रोग के आने पर इतने कायर होते हो सो विचार करो - नरकों में इस जीव ने कौन-कौन सा कष्ट नहीं भोगा? वहाँ पर असंख्यात बार अनन्त बार मारे, विदारे, चीरे, फाड़े गये हो; यहाँ पर तुम्हारे लिए कितना-सा दुःख है? तिर्यञ्चगति के घोर दुःख भगवान् केवलज्ञानी भी वचनद्वार से कहने में समर्थ नहीं हैं। मैं तिर्यञ्चपर्याय में पूर्वकाल में अनन्त बार अग्नि में जल-जल कर मरा हूँ; अनन्त बार पानी में डूबकर मरा हूँ; अनन्त बार विष-भक्षण कर मरा हूँ; अनन्त बार सिंह, व्याघ्र, सर्पादि द्वारा विदारा गया हूँ; शस्त्रों से छेदा गया हूँ। अनन्त बार शीत-वेदना से उष्णता की वेदना से क्षुधा की वेदना से, तृषा की वेदना से मरा हूँ, अभी यह रोगजनित वेदना कितनी सी है?

रोग तो मेरा उपकार ही कर रहा है। यदि रोग उत्पन्न नहीं होता तो मेरा देह से स्नेह नहीं घटता; सभी से छूटकर परमात्मा की शरण ग्रहण नहीं करता। इसलिए इस समय जो रोग हुआ है, वह भी मेरा आराधना मरण में प्रेरणा करने वाला मित्र ही है। इस प्रकार विचार करने वाला ज्ञानी रोग के आने पर भी क्लेश नहीं करता है, वह तो मोह का नाश कर देने का उत्सव ही मनाता है।

समाधिमरण तो अमृत देने वाला है

ज्ञानिनोऽमृत - सङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा॥ 13॥

अन्वयार्थ : (**अस्मिन् लोके**) इस लोक में (**यथा**) जिस प्रकार (**आमकुम्भस्य**) कच्चे घड़े की (**पाकविधिः**) पाकविधि, (**तापकरः सन् अपि**) तापकारी होते हुए भी (**अमृतसङ्गाय**) जल के समागम के लिए (**भवेत्**) होती है, (**ज्ञानिनः**) ज्ञानी की (**मृत्युः**) मृत्यु

ज्यों घट देता अग्नि-परीक्षा, फिर जल-धारी बन पाता,
मृत्यु-परीक्षा देकर ज्ञानी, त्यों ही शिवपुर को जाता।
शीतलताधारी होना हो, तो आवश्यक है तपना,
मृत्यु-ताप से कातर-जन को, मोक्ष सदा रहता सपना॥

(अमृतसङ्गाय) अमरत्व के समागम के लिए होती है।

Though death creates pain, torture, But to wise men it is like nectar, As in fire some good pitcher. Is prepared to keep cool water.

अर्थ : इस लोक में मृत्यु तो समस्त जगत् के जीवों को आताप करने वाली है, किन्तु सम्यग्ज्ञानी जीवों के लिए तो वह अमृत का साथ अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाली है। जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े को अमृत रूप जल भरने के लिए अग्नि में पकाया जाता है, यदि कच्चे घड़े को अग्नि में विधि पूर्वक नहीं पकाया जाए तो घड़े में जल नहीं रखा जा सकता है; अग्नि में एक बार पक जाने पर उस घड़े में बहुत समय तक जल भरकर रखा जा सकता है; उसी प्रकार मृत्यु के समय यदि एक बार समभावों से आताप सहन कर लिया जाए तो यह जीव निर्वाण का पात्र हो जाए।

भावार्थ : अज्ञानी के तो मृत्यु के नाम से ही परिणामों में कष्ट होने लगता है कि – अब मैं चला, अब कैसे जीऊँ, क्या करूँ, कौन रक्षा करे? इस प्रकार दु:खी होने लगता है क्योंकि वह तो बहिरात्मा है, देहादि बाह्य वस्तु को ही आत्मा मानता है। जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टि है, वह ऐसा मानता है – आयुकर्म आदि के निमित्त से ही देह का धारण है, यह अपनी स्थिति पूर्ण होने पर अवश्य ही विनशेगा। मैं आत्मा अविनाशी ज्ञान स्वरूप हूँ, जीर्ण देह को छोड़कर नवीन शरीर में प्रवेश करने में मेरी कुछ भी हानि नहीं है।

समाधिमरण महान् तप – मुक्ति का सरल उपाय

यत्फलं प्राप्यते सद्भर्व्रतायास – विडम्बनात्।
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्यु–काले समाधिना॥ 14॥

सज्जन और विवेकी मानव, पाप – पंक से डरते हैं,
अत: व्रतों को धारण करके, उनका पालन करते हैं।
इस उद्यम का जो फल होता, उसको वह नर भी पाता,
जो बड़भागी मरण–काल में, सत्समाधि को अपनाता॥

अन्वयार्थ : (सद्भिः) सत्पुरुषों द्वारा **(व्रतायास-विडम्बनात्)** व्रतों के पुरुषार्थ सम्बन्धी क्लेश से **(यत् फलं)** जो फल **(प्राप्यते)** प्राप्त किया जाता है **(मृत्युकाले)** मृत्यु-काल में **(समाधिना)** समाधि के द्वारा **(तत् फलं)** वह फल **(सुखसाध्यं)** सुखपूर्वक साधने-योग्य **(स्यात्)** हो सकता है।

Holy men, bearing pains of fasts, Acquire some fine retribution, Which in end, in sweet fruit lasts. At Samadhi of happy death occasion.

अर्थ : सत्पुरुष जिस फल को बड़े खेदपूर्वक व्रतों को पालन करने से प्राप्त कर पाते हैं, वह फल मृत्यु के अवसर में थोड़े समय को शुभध्यान रूप समाधिमरण का सुखपूर्वक साधन करने से प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ : स्वर्ग में जो इंद्रादि पद व परम्परा से निर्वाण पद पाँच महाव्रतों को धारण करने से तथा घोर तपश्चरण करने से प्राप्त होता है, वह पद मृत्यु के समय में देह, कुटुम्बादि से ममता छोड़कर, भय रहित होकर, वीतरागता सहित चार आराधनाओं की शरण ग्रहण करके, कायरता छोड़कर, अपने ज्ञायक स्वभाव का अवलंबन लेकर मरण करने पर सहज सिद्ध हो जाता है, तथा स्वर्गलोक में महर्द्धिक देव हो जाता है। वहाँ से आकर बड़े कुल में उत्पन्न होकर, उत्तम संहनन आदि सामग्री पाकर, दीक्षा धारण कर, रत्नत्रय की पूर्णता को प्राप्त होकर निर्वाण को चला जाता है।

समाधिधारक उत्तम गति में ही जाता है

अनार्तः शान्तिमान् मर्त्यो न तिर्यग्नापि नारकः।
धर्म्य-ध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनी त्वमरेश्वरः॥ 15॥

जो नर शान्त-निराकुल होता, मरकर कष्ट नहीं पाता,
पशु-गति में वह जन्म न लेता, नरकों में भी ना जाता।
मरण-काल को निकट जानकर, जलाहार भी जो छोड़े,
धर्म-ध्यान करके वह नाता, स्वयं इन्द्र-पद से जोड़े॥

अन्वयार्थ : (**अनार्तः**) पीड़ा-रहित, (**शान्तिमान्**) शान्ति-सम्पन्न (**मर्त्यः**) मनुष्य (**पुरः**) आगामी जन्म में (**न तिर्यक्**) न तिर्यञ्च, (**नापि**) न ही (**नारकः**) नारक होता है। (**धर्म्यध्यानी**) धर्म्यध्यानी एवं (**अनशनी मर्त्यः**) उपवासी मनुष्य (**तु**) तो (**अमरेश्वरः**) देवों का इन्द्र होता है।

Peacefully who dies without affliction can't go to hell or animal race. With the performances of religion. Bears himself a Godly face.

अर्थ : जो मरण के समय में आर्त अर्थात् दुःख रूप परिणाम नहीं करता है तथा शान्तिमान अर्थात् रागद्वेष रहित होकर समभाव रूप परिणाम रखता है, वह पुरुष तिर्यञ्च व नारकी नहीं होता है। जो धर्मध्यान सहित अनशन व्रत धारण करके मरता है, वह स्वर्गलोक में इन्द्र होता है व महर्द्धिक देव होता है, अन्य हीन पर्याय नहीं पाता है - ऐसा नियम है।

भावार्थ : यह उत्तम मरण का अवसर प्राप्त करके आराधना सहित मरण करने का यत्न करना चाहिए। मरण आने पर भयभीत होकर परिग्रह में ममत्व करके आर्त परिणामों से मरकर कुगति में नहीं जाओ। ऐसा अवसर अनन्त भवों में नहीं मिलेगा और मरण छोड़ेगा नहीं। इसलिए सावधान होकर धर्मध्यान सहित धैर्य धारण करके देह का त्याग करना चाहिए।

समस्त तप समाधि के लिए हैं

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना॥ 16॥

तपे हुए तप का जो फल है, व्रत-पालन का अन्य नहीं,
और पढ़ा जो धर्म-शास्त्र को, उसका फल भी एक वही।
सकल-धर्म का वह अनुपम फल, प्रभुवर ने भव-हरण कहा,
जीवन मन्दिर, उच्च-शिखर व्रत, स्वर्णकलश सन्मरण महा॥

अन्वयार्थ : (तप्तस्य) तपे हुए **(तपसः च अपि)** तप का, **(पालितस्य)** पाले हुए **(व्रतस्य च)** व्रत का और **(पठितस्य)** पढ़े हुए **(श्रुतस्य)** शास्त्र का **(अपि)** भी **(फलं)** फल **(समाधिना)** समाधि-पूर्वक **(मृत्युः)** मृत्यु है।

Grappling all troulies of penance, Following vows and reading scripture. Daily, regularly not perchance. All results in joyful departure.

अर्थ : तपों के द्वारा तपने का, व्रतों के पालने का तथा श्रुत के पढ़ने का फल तो समाधि अर्थात् अपने आत्मा की सावधानी सहित मरण करना ही है।

भावार्थ : हे आत्मन्! तुमने जीवन में बहुत समय इन्द्रियों के विषयों की वांछा रहित होकर अनशनादि तप किया है, वह अन्त समय में आहारादि के त्याग पूर्वक, संयम सहित, देह से ममता रहित होकर समाधिमरण करने के लिए किया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग आदि व्रत धारण किए हैं, वे सभी देहादि परिग्रह में ममता त्यागकर समस्त मन-वचन-काय से आरम्भादि का त्याग कर, समस्त शत्रु-मित्रों में बैर-राग छोड़कर, उपसर्ग में धीरज धारण कर, अपने एक ज्ञायक स्वभाव का अवलंबन लेकर समाधिमरण करने के लिए किए हैं तथा जो समस्त श्रुतज्ञान का पठन किया है, वह भी संक्लेश रहित धर्मध्यान सहित होकर, देहादि से भिन्न अपने स्वरूप को जानकर, भयरहित, समाधिमरण के लिए ही विद्या की आराधना में काल व्यतीत किया है।

यदि मरण के अवसर में भी ममता, भय, द्वेष, कायरता, दीनता नहीं छोड़ोगे तो जो इतने समय तक तप किए, व्रत पाले, श्रुत का अध्ययन किया, वे सभी निरर्थक हो जायेंगे। इसलिए इस मरण के अवसर में सावधानी नहीं छोड़ो।

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जन-वादः।
चिरंतर-शरीर-नाशे नवतर-लाभे च किं भीरुः ॥17॥

अन्वयार्थ : चूँकि **(इति हि जनवादः)** ऐसी ही लोकोक्ति है कि **(अतिपरिचितेषु)** अति-परिचितों में **(अवज्ञा)** अवमानना का भाव और **(नवे)** नवीन के प्रति **(प्रीतिः)** प्रीति **(भवेत्)** होती है इसलिए **(चिरंतरशरीरनाशे)** अत्यन्त पुराने शरीर का नाश **(च)** और **(नवतरलाभे)** अतिशय नवीन का लाभ होने पर **(भीरुः)** भीरु **(किं)** क्या होना ?

Worldly saying is, interest in new, No interest in old acquaintance old body's ruin, birth of new, Why do fear, o life-substanceT?

अर्थ : लोगों का ऐसा कहना है कि जिस वस्तु का अतिसेवन-अतिपरिचय हो जाता है, उसमें अवज्ञा-अनादर होने लगता है, रुचि घट जाती है; जिसका नया साथ होता है, उसमें अधिक प्रीति होती है, यह बात प्रसिद्ध है; किन्तु हे जीव! तुमने इस शरीर का बहुत समय से सेवन किया है, अब इसका नाश होने पर तथा नए शरीर की प्राप्ति होने से क्यों डर रहे हो? भय करना उचित नहीं है।

भावार्थ : जिस शरीर को बहुत काल तक भोगकर जीर्ण कर दिया, सार रहित-बल रहित कर दिया तथा नवीन उज्ज्वल देह धारण करने का अवसर आया है तो अब भय क्यों करते हो? यह जीर्ण तो नष्ट ही होगा। इसमें ममता धारण करके मरण बिगाड़कर दुर्गति का कारण कर्मबंध नहीं करना चाहिए।

जहाँ-कहीं अति-परिचय होता, वहाँ अवज्ञा हो जाती,
कहें दूर के ढोल सुहाने, प्रीति नए पर ही आती।
करो भव्य ! चरितार्थ कहावत, जीर्ण-देह को जाने दो,
होकर अभय अहो! चेतन को, अब नूतन-तन पाने दो॥

स्वर्गादेत्य पवित्र-निर्मल - कुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्वा भक्ति-विधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम्!
भुक्त्वा भोगमहर्निशं पर-कृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,
पात्रावेश-विसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥ 18 ॥

अन्वयार्थ : (स्वर्गात्) देव-लोक से **(पवित्र निर्मल-कुले)** पवित्र एवं निर्मल कुल में **(एत्य)** आ करके वे भव्य-जन **(भक्ति-विधायिनां)** भक्ति करने वाले मनुष्यों के लिए **(बहुविधं)** अनेक प्रकार का **(वाञ्छानुरूपं)** इच्छानुकूल **(धनं)** धन **(दत्वा)** प्रदान कर **(जनैः)** सर्वजनों के द्वारा **(संस्मर्यमाणाः सन्तः)** संस्मृत होते हुए तथा **(अहर्निशं)** दिन-रात **(पर-कृतं)** पुण्य-प्रदत्त/इन्द्रिय-जनित **(भोगं)** सांसारिक-सुख **(भुक्त्वा)** भोगकर **(मण्डले)** भू-मण्डल पर **(इव)** मानो **(क्षणं)** क्षण भर के लिए **(स्थित्वा)** ठहरकर **(स्वतः)** स्वयं **(पात्रावेश विसर्जनां)** पात्र-सम्बन्धी आवेश का है विसर्जन जिसमें, ऐसी **(मृतिं)** मृत्यु को **(लभन्ते)** प्राप्त कर लेते हैं।

Having fine death one sees light. In good family of in the heaven. He fulfills the desire's flight- Of his near kith and kin.

Enjoying good luck he see off. This land of th mortal kingdom. Like and actor, akin to putting off. Disguise, acquires the true freedom.

सुरपति का साम्राज्य भोग कर नर-भव सुकुल सुयश पाते,
दान-पुण्य में अभिवांछित-धन प्रभु-भक्तों पर बरसाते।
सुख-समृद्धि में जीवन के दिन मानों पल में कट जाते,
भव का नाटक छोड़ अन्त में सन्त स्वयं शिव-पद पाते॥

अर्थ : इस प्रकार जो भय रहित होकर समाधिमरण में उत्साह सहित चार आराधनाओं का आराधन कर मरण करता है, उसे स्वर्गलोक के बिना अन्य गति की प्राप्ति नहीं होती है, स्वर्गों में महर्द्धिक देव ही होता है, ऐसा निश्चय है, स्वर्ग में आयु के अंत तक महासुख भोगकर इस मनुष्य लोक में पुण्यवान निर्मल कुल में अनेक लोगों द्वारा इंतजार करते-करते जन्म लेकर, अपने सेवक जनों तथा कुटुम्ब-परिवार-पुत्र-मित्रादि जनों को अनेक प्रकार के इच्छित धन भोगादि रूप फल देकर, पुण्य से प्राप्त भोगों को निरंतर भोगकर, आयु पूर्ण होने तक थोड़े समय को पृथ्वी मंडल पर संयमादि सहित वीतराग रूप होकर विहार करके, जैसे नृत्य के अखाड़े में नृत्य करने वाला पुरुष लोगों को आनंद उत्पन्न करके चला जाता है, उसी प्रकार वह सत्पुरुष भी सभी लोगों को आनंद उत्पन्न करके स्वयं ही देह त्याग करके निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

दोहा

मृत्यु-महोत्सव-वचनिका, लिखी सदासुख-काम।
शुभ आराधन मरण करि, पाऊँ निजसुख-धाम॥ 1॥
उगणी से ठारा शुकल, पंचमि मास असाढ़।
पूरण लखि वांचो सदा, मन धरि सम्यक् गाढ़॥ 2॥